डर, चुप्पी और न्याय : पॉक्सो एक्ट ने समाज को कितना बदला?

ओजस्कर पाण्डेय

2007 में भारत में हुए बाल दुर्व्यवहार पर राष्ट्रीय अध्ययन ने पहली बार देश को चौंका दिया.इस अध्ययन में 13 राज्यों के 12,447 बच्चों से बात की गई.निष्कर्ष भयावह थे. 53.22 प्रतिशत बच्चों ने किसी न किसी रूप में यौन शोषण का अनुभव किया था, जिनमें से 52.94 प्रतिशत लड़के और 47.06 प्रतिशत लड़कियाँ थीं.यानी शोषण केवल लड़कियों की समस्या नहीं थी — यह समाज की पूरी अगली पीढ़ी को प्रभावित कर रही थी.इससे पहले भारत में बच्चों के यौन शोषण के लिए कोई विशेष कानून नहीं था. आइपीसी की धारा 375 (बलात्कार), 354 (छेड़छाड़) और 377 (अप्राकृतिक अपराध) इस्तेमाल होती थीं, लेकिन ये सभी वयस्क परिप्रेक्ष्य में लिखी गई थीं.बच्चों के लिए, उनकी असहमति की अलग परिभाषा के लिए, पेनिट्रेशन के अलावा अन्य अपराधों के लिए - कानून खामोश था. पॉस्को से पहले, अदालतें अक्सर घर के मामलों को हल्के में लेती थीं.बच्चे गवाह नहीं बन सकते थे क्योंकि उनकी विश्वसनीयता संदिग्ध मानी जाती थी.अपराधी परिवार के सदस्य अक्सर बच निकलते थे.- बचपन बचाओ आंदोलन, 2011 रिपोर्ट 2012 में दिल्ली गैंगरेप कांड के बाद जो राष्ट्रव्यापी आक्रोश उठा, उसने इस कानून को गति दी.

पॉस्को एक्ट 14 नवंबर 2012 को - विडंबनापूर्ण रूप से बाल दिवस पर लागू हुआ.यह अपने आप में एक विशिष्ट, व्यापक और प्रगतिशील कानून थाः पॉस्को ने पहली बार 18 वर्ष से कम आयु को बच्चा परिभाषित किया. इसने स्पर्श और अस्पर्श — दोनों प्रकार के यौन अपराधों को शामिल किया. इसने पीड़ित-केंद्रित प्रक्रिया अपनाई — बाल सुलभ अदालतें, विशेष लोक अभियोजक, बच्चे की पहचान गुप्त रखना.सबसे महत्त्वपूर्णः उल्टे बोझ का सिद्धांत आरोपी को खुद को निर्दोष साबित करना होगा.भारत में जब भी किसी मासूम बच्चे के साथ यौन हिंसा की खबर आती है, पूरा समाज कुछ क्षणों के लिए विचलित हो उठता है.टीवी चैनलों पर बहस होती है, सोशल मीडिया पर आक्रोश उमड़ता है, मोमबत्तियाँ जलती हैं और फिर धीरे-धीरे सब सामान्य हो जाता है.लेकिन जिस बच्चे का बचपन टूट जाता है, उसके लिए जीवन कभी सामान्य नहीं हो पाता.इसी सामाजिक त्रासदी के बीच वर्ष 2012 में भारत सरकार ने पॉक्सो एक्ट लागू किया.इस कानून का उद्देश्य बच्चों को यौन अपराधों से सुरक्षा देना, अपराधियों को कठोर दंड देना और पीडित बच्चों को संवेदनशील न्याय उपलब्ध कराना था.आज लगभग डेढ़ दशक बाद सबसे बड़ा प्रश्न यही है कि क्या पॉक्सो एक्ट ने वास्तव में समाज को

बदला है? क्या बच्चों के प्रति समाज अधिक संवेदनशील हुआ है? क्या अपराध कम हुए हैं? या फिर केवल कानून की किताब मोटी हुई है और जमीन पर भय, शर्म, चुप्पी और न्याय की धीमी प्रक्रिया आज भी जस की तस है? इस प्रश्न का उत्तर सीधा हाँ या नहीं में नहीं दिया जा सकता.

पॉक्सो एक्ट ने भारतीय समाज में कई बड़े बदलाव पैदा किए हैं, लेकिन इसके साथ अनेक विरोधाभास भी सामने आए हैं.यह कानून जागरूकता, रिपोर्टिंग और न्याय की दिशा में क्रांतिकारी साबित हुआ, मगर सामाजिक मानसिकता, न्यायिक देरी और दुरुपयोग जैसी चुनौतियाँ आज भी इसकी प्रभावशीलता पर प्रश्नचिह्न लगाती हैं. भारत में बच्चों के विरुद्ध अपराधों की भयावह स्थिति को समझना जरूरी है.राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो यानी एनसीआरबी के अनुसार वर्ष 2024 में बच्चों के खिलाफ अपराधों में लगभग 6 प्रतिशत की वृद्धि दर्ज की गई और कुल 1.87 लाख मामले सामने आए.इनमें 69,191 मामले सीधे पॉक्सो एक्ट के अंतर्गत दर्ज किए गए.यह संख्या केवल आँकड़ा नहीं है; यह बताती है कि भारत का बचपन किस भयावह दौर से गुजर रहा है.लेकिन इन आँकड़ों का दूसरा पक्ष भी महत्वपूर्ण है.विशेषज्ञ मानते हैं कि पहले की तुलना में अब अधिक मामले दर्ज हो रहे हैं क्योंकि समाज में शिकायत करने की प्रवृत्ति बढ़ी है.पहले परिवार इज्जत के नाम पर मामलों को दबा देते थे.बच्चे बोलने से डरते थे, पुलिस सुनने से बचती थी और समाज पीड़ित को ही दोषी ठहराता था.पॉक्सो एक्ट ने इस चुप्पी को पहली बार कानूनी चुनौती दी.यही इस कानून का सबसे बड़ा सामाजिक परिवर्तन है—बच्चों के यौन शोषण को निजी या पारिवारिक मामला मानने के बजाय गंभीर अपराध के रूप में स्वीकार किया गया.पहले भारतीय समाज में बच्चों के साथ यौन अपराध पर खुलकर बात करना लगभग वर्जित था.स्कूलों में सेक्स एजुकेशन को अश्लीलता माना जाता था.परिवार बच्चों की बातों को गलतफहमी कहकर टाल देते थे.लेकिन पॉक्सो एक्ट ने यह स्पष्ट किया कि बच्चे की सुरक्षा राज्य की जिम्मेदारी है.इसने गुड टच और बैड टच जैसे विषयों को सार्वजनिक विमर्श का हिस्सा बनाया.

आज स्कूलों में जागरूकता कार्यक्रम होते हैं, अभिभावकों को संवेदनशील बनाया जा रहा है, बच्चों को हेल्पलाइन नंबर सिखाए जा रहे हैं.यह बदलाव छोटा नहीं है.भारत जैसे पारंपरिक समाज में बच्चों की यौन सुरक्षा पर खुलकर चर्चा होना अपने-आप में सामाजिक क्रांति है.सुप्रीम कोर्ट ने भी हाल के वर्षों में कहा कि पॉक्सो एक्ट केवल सजा देने वाला कानून नहीं, बल्कि समाज में जागरूकता फैलाने का माध्यम भी है.अदालत ने सरकारों को सेक्स एजुकेशन और बाल सुरक्षा जागरूकता बढ़ाने का दायित्व याद दिलाया.हालाँकि यह भी सच है कि जागरूकता बढ़ने के साथ अपराधों की भयावहता भी अधिक स्पष्ट होकर सामने आई है.एनसीआरपबी के आंकड़े बताते हैं कि 2024 में पॉक्सो मामलों के लगभग 96 प्रतिशत आरोपी बच्चे के परिचित थे.इनमें रिश्तेदार, पड़ोसी, पारिवारिक मित्र और ऑनलाइन दोस्त शामिल थे.यह आँकड़ा भारतीय समाज के सबसे असहज सत्य को उजागर करता है—बच्चों के लिए सबसे बड़ा खतरा बाहर नहीं, अक्सर घर और परिचित वातावरण के भीतर मौजूद है.समाज लंबे समय तक बच्चों को अजनबियों से सावधान रहने की सीख देता रहा, लेकिन पॉक्सो एक्ट के बाद यह समझ विकसित हुई कि शोषण का चेहरा कई बार परिचित होता है.यह मानसिक बदलाव अत्यंत महत्वपूर्ण है।

भारत में पॉक्सो मामलों की संख्या लगातार बढ़ रही है.अदालतों में लाखों मामले लंबित हैं.कई मामलों में फैसला आने में वर्षों लग जाते हैं.पीड़ित परिवार आर्थिक और मानसिक रूप से टूट जाते हैं.कई बार समझौते का दबाव बनाया जाता है.यही कारण है कि आलोचक कहते हैं कि पॉक्सो एक्ट ने रिपोर्टिंग तो बढ़ाई, लेकिन न्याय व्यवस्था को पर्याप्त मजबूत नहीं किया.कुछ राज्यों में विशेष अदालतें बनाई गईं, फास्ट-ट्रैक कोर्ट स्थापित हुए और फॉरेंसिक जांच को मजबूत किया गया.उदाहरण के लिए चंडीगढ़ में 2024 में पॉक्सो मामलों में दोषसिद्धि दर में लगभग 14 प्रतिशत की वृद्धि दर्ज की गई.पॉक्सो एक्ट के साथ एक और जटिल बहस उभरी है—किशोर प्रेम संबंधों को अपराध मानने की.भारत में सहमति की आयु 18 वर्ष निर्धारित है.कई मामलों में दो किशोर-किशोरियों के सहमति से बने संबंध भी पॉक्सो के तहत दर्ज हो जाते हैं क्योंकि कानून में सहमति का कोई महत्व नहीं है यदि दोनों में से एक नाबालिग हो.इससे अदालतों में ऐसे अनेक मामले पहुँचे जहाँ परिवारों ने प्रेम संबंधों को रोकने के लिए पॉक्सो का इस्तेमाल किया.विशेषज्ञों का मानना है कि इससे कानून का मूल उद्देश्य कमजोर पड़ता है और वास्तविक यौन अपराधों पर ध्यान कम होता है.दूसरी ओर महिला और बाल अधिकार कार्यकर्ताओं का तर्क है कि कम उम्र में संबंधों का शोषणकारी स्वरूप समझना कठिन होता है, इसलिए कठोर सुरक्षा आवश्यक है.यह बहस आज भी जारी है.पॉक्सो एक्ट ने भारतीय परिवारों के भीतर भी एक नई बेचैनी पैदा की है.माता-पिता अब बच्चों की सुरक्षा को लेकर अधिक सतर्क हुए हैं. क्या बदलाः पहला- रिपोर्टिंग संस्कृति- 2012 में जहाँ शोषण के मामले हज़ारों में थे, वे अब लाखों में हैं.यह इसलिए नहीं कि अपराध बढ़ा, बल्कि इसलिए कि लोगों ने बोलना शुरू किया.दूसरा-कानूनी ढाँचाः पहली बार बच्चों के लिए विशेष, समग्र कानून.बाल साक्षी की विशेष प्रक्रिया.तीसरा- संस्थागत व्यवस्था- एनसीपीसीआर की सक्रियता, चाइल्डइन का विस्तार, सखी केंद्र.चौथा - न्यायिक जागरूकता- सुप्रीम कोर्ट ने पॉस्को मामलों को लेकर नियमित दिशा-निर्देश जारी किए.क्या नहीं बदलाः पहला- सामाजिक कलंकः अभी भी पीड़ित परिवार को इज़्ज़त गई की भावना से जोड़ा जाता है.दूसरा - न्यायिक विलंबः औसत 5-7 साल का ट्रायल.तीसरा - पुनर्वास की कमीः मुआवज़ा मिलता है, लेकिन जिंदगी नहीं बनती.चौथा - ग्रामीण-शहरी खाईः शहरी बच्चों को जानकारी और संसाधन, ग्रामीण को अँधेरा.पाँचवाँ - पुरुष पीड़ितों की उपेक्षा- कानून समान, समाज असमान. आगे की राह- एक - न्यायिक क्षमता- हर जिले में कम से कम एक पूर्णकालिक पॉस्को अदालत, अनिवार्य हो.

दो — फॉरेंसिक सुधार- हर जिला अस्पताल में 24 घंटे बाल फॉरेंसिक सेवा.एफआईआर के 24 घंटे के भीतर मेडिकल जाँच अनिवार्य.

तीन — पुनर्वास कोषः पीड़ित पुनर्वास कोष को 5 लाख न्यूनतम किया जाए. मनोवैज्ञानिक सहायता 5 वर्षों तक सुनिश्चित हो.

चार — डिजिटल सुरक्षा- स्कूल पाठ्यक्रम में डिजिटल सुरक्षा अनिवार्य.सोशल मीडिया कंपनियों पर बाल यौन शोषण सामग्री रिपोर्टिंग की सख्त जवाबदेही. पाँच — सामाजिक जागरूकताः ग्राम पंचायत स्तर पर बाल सुरक्षा समितियाँ अनिवार्य.आँगनवाड़ी और आशा कार्यकर्ताओं को पॉस्को प्रशिक्षण।

छह — लैंगिक संवेदनशीलता- लड़कों के शोषण पर जागरूकता अभियान.मर्दानगी की अवधारणा को चुनौती देने वाले सामाजिक कार्यक्रम.

> पॉस्को एक्ट एक महत्त्वपूर्ण कदम था — एक संकल्प था.तेरह वर्षों में इसने लाखों बच्चों को न्याय की आस दी, हज़ारों अपराधियों को जेल की सज़ा दिलाई, और उस चुप्पी को तोड़ने में मदद की जो दशकों से बच्चों के शोषण को ढक रही थी.लेकिन एक कानून अकेले समाज नहीं बदलता. पॉस्को ने न्याय का रास्ता खोला — लेकिन उस रास्ते पर चलने के लिए जो सामाजिक साहस, संस्थागत तत्परता और मनोवैज्ञानिक समझ चाहिए, वह अभी भी निर्माण के दौर में है.जब एक 9 साल की बच्ची अपने शिक्षक के खिलाफ एफआईआर दर्ज करवाती है और 7 साल बाद अदालत में खड़ी होकर कहती है — हाँ, मुझे न्याय मिला — तब पॉस्को सफल होगा.जब एक ग्रामीण माँ अपने पति के खिलाफ एफआईआर दर्ज करवाने की हिम्मत जुटाती है — तब पॉस्को सफल होगा.जब एक लड़का बिना शर्म के कह सके मेरे साथ भी हुआ — तब पॉस्को सफल होगा.अंततः कहा जा सकता है कि पॉक्सो एक्ट ने भारतीय को झकझोरा है.इसने चुप्पी तोड़ी है, बच्चों की सुरक्षा को राष्ट्रीय विमर्श बनाया है, अपराधियों में भय पैदा किया है और न्याय व्यवस्था को अधिक संवेदनशील बनने की चुनौती दी है.लेकिन यह परिवर्तन अभी अधूरा है.कानून ने रास्ता दिखाया है, मंजिल नहीं पाई है.यदि समाज अपनी मानसिकता नहीं बदलेगा, यदि परिवार बच्चों की बात सुनने को तैयार नहीं होंगे, यदि न्याय व्यवस्था धीमी रहेगी, तो पॉक्सो एक्ट केवल कागज पर कठोर कानून बनकर रह जाएगा.और यदि समाज ने इस कानून की आत्मा को समझ लिया— कि हर बच्चा भयमुक्त बचपन का अधिकार रखता है—तभी वास्तविक परिवर्तन संभव होगा.

व्यंग्य

मोदी की स्वदेशी मेलोडी...

रवि उपाध्याय
(लेखक व्यंगकार और राजनीतिक समीक्षक हैं)

हमारे देश में दो सफल प्रसिद्ध बिजनेस कम्यूनिटी हैं.इनमें एक कम्युनिटी मारवाड़ी है और दूसरी गुजराती कम्युनिटी है.बिजनेस के मामले में इन दोनों समुदायों की दुनियां भर में हनक है.बता दें कि कम्युनिटी का हिंदी में अर्थ है समुदाय.कम्युनिटी शब्द का उपयोग यहां, इंप्रेशन डालने के लिए किया गया है.जिससे पाठक को लगे कि लेखक भी उसकी तरह एजुकेटेड है.आजकल किसी का कोई भरोसा नहीं, कि खुद को ज्यादा ही इंटेलिजेंट समझने वाला कोई भी व्यक्ति न जाने कब पूछने लगे कि अपनी डिग्री बताओ.अच्छा हुआ कि तुलसी बाबा और कबीर आज के जमाने में पैदा नहीं हुए वरना उनके पास डिग्री नहीं होने पर उनकी रचनाओं को भी ख़ारिज कर दिया जाता.डिगरी पूछने का शौक उनको ज्यादा होता है जो किसी तरह टीप टाप के किसी तरह अपनी नैया पार कर चुके हैं.मजेदार तो यह कि डॉक्टर और इंजीनियरिंग पास करने के बाद वो वही कर रहे हैं जो बिना डिग्री वाला कर रहा है.गुजराती बिजनेस कम्यूनिटी का यह हाल है कि पिछले दस - बारह साल में विपक्ष ने इस कम्यूनिटी के दो बड़े उद्योगपतियों अंबानी अडानी का नाम इतनी बार जपा है कि यह नाम पूरी दुनिया में मशहूर हो गया.साथ ही इन दोनों का नाम अब जनता को भी कंठस्थ हो गया है.विपक्ष के नेता कभी जब अपने बयानों में इनका नाम लेना भूल जाते हैं तो लगता है कि क्या बात है,कोई सेटिंग वेटिंग तो नहीं हो गई.क्योंकि नेता सेटिंग में उस्ताद हैं.कब ये दोस्त बन जाते हैं और कब इनमें कट्टी हो जाती है पता नहीं चलता.बिजनेस का उत्कृष्ट नमूना देखना है तो अब हमारे मोटा भाई को ही देख लो.

उन्होंने पश्चिम बंगाल में दस रुपए के करारे नोट में झालमुड़ी खरीद कर वो बिजनेस स्किल दिखाया कि दीदी का पूरा तख्तोताज ताज ही पलट गया.जहांगीर हो या हुमायूं सब परास्त हो गए.अभिषेक की धमकी और धमक दोनों हवा हवाई हो गई.आई पैक खुद तो पैक हुई ही उसने टीएमसी को भी पैक करा दिया।कोलकाता की धरती में जो कंपन पैदा हुआ उसकी थरथराहट सैफई तक सुनाई दी.बिजनेस का पहला सिद्धांत है की आपकी बोली में शहद से मिठास होनी चाहिए.यह बात गुजराती और मारवाड़ी व्यापारियों में अच्छे से मौजूद है.यही कारण है कि देश के प्रत्येक राज्य और दुनियां की हर एक कंट्री में ये दोनों समुदाय उद्योग व्यवसाय में शीर्ष पर हैं.गुजरातियों की बोली ही मीठी नहीं होती उनके प्रत्येक भोजन में भी मिठास होती है।अपने मोटा भाई तो वक्तृत्व कला में तो माहिर हैं ही.उन्होंने इस वक्तृत्व कला का मुजाहिरा हाल ही में पांच देशों की यात्रा में किया.कमाल की बात रही कि मोटा भाई ने यूनाइटेड अरब अमीरात (यूएई) से लेकर इटली में जो दिखाया वह पूरी दुनिया में चर्चा का विषय बन गया.राहुल गांधी के ननिहाल के देश इटली की प्रधानमंत्री जॉर्जिया मेलोनी के साथ उनकी केमिस्ट्री तो सबसे हट कर और विश्व विख्यात है.मोटा भाई ने पश्चिम बंगाल में तो दस रुपए की झालमुड़ी से बंगाल वासियों को जीता था.लेकिन इटली में तो मोटा भाई ने भारत में निर्मित केवल एक रूपए की टॉफी मेलोडी भेंट कर इटली के साथ लाखों डॉलर के करार कर डाले.

बताओ हमारे देश में ऐसा कोई और प्रधानमंत्री है जिसने किसी देश की महिला प्रमुख को टॉफी गिफ्ट करने की हिम्मत दिखाई हो.इसके लिए साफ सुथरा और पवित्र दिल भी चाहिए।बता दें कि इटली की प्रधानमंत्री जॉर्जिया मेलोनी 2022 में प्रधानमंत्री बनने के बाद जब मोटा भाई से मिलीं तो वो मोदी से इतनी प्रभावित हो गईं कि उन्होंने ही अपनी और मोदी की जोड़ी को मेलोडी नाम दे दिया.इसमें मेलोनी के पहले दो अक्षर मेलो और मोदी का आखरी अक्षर डी मिलाकर मेलोडी शामिल किए गए.उसी घटनाक्रम की याद ताज़ा करते हुए ही शायद प्रधानमंत्री मोदी ने उन्हें भारत में निर्मित पार्ले कंपनी द्वारा निर्मित मेलोडी टॉफी का पैकेट गिफ्ट कर दुनिया भर में इस टॉफी को लोकप्रिय कर दिया.इस टॉफी की टैग लाइन है मेलोडी खाओ खुद जान जाओ. तो आप भी सबसे पहले मेलोडी खाओ और आगे की बात खुद जान जाओ.पर इसके पहले मेलोडी खाना जरूरी है।मोदी जी ने मेलोनी को मेलोडी टॉफी क्या पेश की भारत की सियासत में तूफान आ गया.विपक्ष के नेता राहुल जी नाराज़ हो गए.उन्होंने यहां पेट्रोल डीजल की कीमतों से लगी महंगाई की आग का जिक्र कर मोदी पर हमला बोल दिया.अब यह उनके ननिहाल के देश की प्रधानमंत्री को मोदी जी द्वारा मेलोडी देने का गुस्सा था या वे महंगाई के कारण आग बबूला थे.यह समझने वाली बात है.हां पर यह सही है कि विपक्ष के नेता ने प्रधानमंत्री पर मवालियों जैसी तू तड़ाक की भाषा का इस्तेमाल कर डाला.वैसे इसमें बुरा मानने की कोई बात नहीं है.हो सकता है कि उनकी बोलचाल की यही भाषा हो.कभी कभी गुस्से में इस तरह की बात जिव्हा पर आ ही जाती है.उनकी इस भाषा से पता चलता है कि वह किस हद तक जमीन से जुड़े हुए व्यक्ति हैं.झुग्गी बस्तियों में भी ऐसी ही भाषा का उपयोग किया जाता है.वैसे प्रधानमंत्री जी को मेरा सुझाव है कि उन्हें एक मेलोडी का पैकेट राहुल जी को भी गिफ्ट करना चाहिए.ताकि उनकी बोली में मिठास आए.यदि उन्हें स्वदेशी मेलोडी पसंद न हो तो वे कैडबरी की डेरी मिल्क आजमा सकते हैं।इससे उनकी जुबान भी योगेन्द्र यादव की तरह मीठी हो सकती है.आगे उनकी मर्जी.

क्षेत्रीय दलों की बदलती राजनीति और तमिलनाडु का नया संकेत

श्याम यादव
राजनीतिक लेखक / टिप्पणीकार

तमिलनाडु में अभिनेता विजय के नेतृत्व में बनी नई सरकार ने भारतीय राजनीति में एक नई चर्चा को जन्म दिया है.यह चर्चा केवल सत्ता परिवर्तन तक सीमित नहीं है, बल्कि उस राजनीतिक प्रवृत्ति से भी जुड़ी है जिसने लंबे समय तक भारतीय राज्यों की राजनीति को प्रभावित किया.देश के अनेक क्षेत्रीय दल धीरे-धीरे ऐसे राजनीतिक ढाँचों में बदलते चले गए जहाँ संगठन से अधिक महत्व किसी एक नेता, परिवार या चेहरे को मिलने लगा.अब जब देश की राजनीति तेजी से बदल रही है, तब इस मॉडल की सीमाएँ भी स्पष्ट दिखाई देने लगी हैं.

> तमिलनाडु की नई राजनीतिक परिस्थिति इसी व्यापक परिवर्तन का प्रतीक बनती दिखाई दे रही है.विजय की सरकार भविष्य में कितनी सफल होगी, इसका आकलन समय करेगा, लेकिन इतना स्पष्ट है कि भारतीय राजनीति अब उस मोड़ पर पहुँच चुकी है जहाँ मतदाता केवल परंपरा नहीं, बल्कि नए विकल्पों को भी अवसर देने लगा है.यही बदलाव आने वाले वर्षों में देश की राजनीति की दिशा तय कर सकता है.

भारतीय राजनीति में क्षेत्रीय दलों का उदय एक स्वाभाविक लोकतांत्रिक प्रक्रिया थी.राष्ट्रीय दल हर राज्य की सामाजिक, सांस्कृतिक और भाषाई आकांक्षाओं को समान रूप से व्यक्त नहीं कर पाते थे.ऐसे में क्षेत्रीय दलों ने स्थानीय अस्मिता, भाषा, संस्कृति और क्षेत्रीय हितों को राजनीतिक स्वर दिया. दक्षिण भारत में द्रविड़ राजनीति, पंजाब में सिख राजनीति, उत्तर प्रदेश और बिहार में सामाजिक न्याय की राजनीति तथा पूर्वी भारत में क्षेत्रीय स्वाभिमान की राजनीति ने लंबे समय तक जनता को प्रभावित किया.इन दलों ने केंद्र की राजनीति में भी अपनी मजबूत उपस्थिति दर्ज कराई. समस्या तब शुरू हुई जब अनेक क्षेत्रीय दल धीरे-धीरे लोकतांत्रिक संगठन के बजाय व्यक्तित्व आधारित राजनीतिक मंच बनते चले गए.दलों के भीतर विचार, संगठन और नेतृत्व निर्माण की जगह परिवारवाद तथा व्यक्तिगत नियंत्रण मजबूत होता गया.परिणाम यह हुआ कि पार्टी का भविष्य किसी एक व्यक्ति की लोकप्रियता पर निर्भर हो गया.जब तक वह नेता मजबूत रहा, संगठन भी प्रभावी दिखाई दिया, लेकिन नेतृत्व कमजोर पड़ते ही दल का संकट सामने आने लगा. तमिलनाडु में द्रविड़ राजनीति लंबे समय तक करुणानिधि और जयललिता जैसे बड़े चेहरों के इर्द-गिर्द घूमती रही.

पंजाब में अकाली दल बादल परिवार तक सिमटता गया.जम्मू-कश्मीर में अब्दुला परिवार लंबे समय तक नेशनल कॉन्फ्रेंस की राजनीति का केंद्रीय चेहरा बना रहा.ओडिशा में नवीन पटनायक ने प्रशासनिक स्थिरता और साफ छवि के आधार पर लंबा शासन किया, परंतु बीजू जनता दल अपने भीतर कोई मजबूत दूसरा नेतृत्व विकसित नहीं कर सकी.पश्चिम बंगाल में ममता बनर्जी ने तृणमूल कांग्रेस को मजबूत जनाधार दिया, लेकिन वहाँ भी पार्टी का केंद्रीय चेहरा लगभग पूरी तरह उन्हीं के इर्द-गिर्द केंद्रित दिखाई देता है.उत्तर प्रदेश और बिहार में लालू प्रसाद यादव, मुलायम सिंह यादव और मायावती की राजनीति ने लंबे समय तक सामाजिक समीकरणों को प्रभावित किया, लेकिन समय के साथ इन दलों का विस्तार सीमित सामाजिक दायरों में सिमटता चला गया. बीते कुछ वर्षों में भारतीय राजनीति की प्राथमिकताओं में स्पष्ट बदलाव दिखाई दिया है.

क्षेत्रीय अस्मिता और पारंपरिक सामाजिक समीकरण आज भी प्रभाव रखते हैं, लेकिन उनके साथ विकास, रोजगार, निवेश और प्रशासन जैसे मुद्दे भी राजनीतिक विमर्श के केंद्र में आ गए हैं.कई राज्यों में मतदाताओं का झुकाव अब उन दलों की ओर बढ़ता दिखाई देता है जो व्यापक सामाजिक आधार और स्थिर शासन का भरोसा प्रस्तुत करते हैं. तमिलनाडु में विजय का उदय इसी बदलती मानसिकता का संकेत माना जा रहा है.लंबे समय तक वहाँ की राजनीति दो बड़े द्रविड़ दलों के बीच सीमित रही, लेकिन अब मतदाता नए राजनीतिक विकल्पों की ओर भी देखने लगा है.

प्रधानमंत्री मोदी की अपीलें और चुनौती

राजीव खंडेलवाल
(लेखक, कर सलाहकार एवं पूर्व अध्यक्ष, बैतूल सुधार न्यास)

पांच राज्यों के चुनाव समाप्त होने के सात दिन बाद 10 मई को हैदराबाद में एक जनसभा को संबोधित करते हुए प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने कहा, वैश्विक आर्थिक संकट विशेष कर ऊर्जा संकट तथा विदेशी मुद्रा पर बढ़ते दबाव के चलते भारत कई विराट चुनौतियों का सामना कर रहा हैं.देशभक्ति हमें चुनौती दे रही है और चुनौती को स्वीकार करने के लिए हमे विदेशी मुद्रा का बचाना होगा.प्रधानमंत्री मोदी ने उक्त संकट का मुकाबला करने के लिए कोरोना संकट काल की याद करते हुए देश के नागरिकों से निम्न सात उपायों को अपनाने की राष्ट्रव्यापी अपील की है.

केंद्रीय शासन प्रधानमंत्री के उपायों को उपरोक्तानुसार शॉर्ट टर्म, मिड टर्म एंड लॉन्ग टर्म की तीन स्तरों पर नीति को अपनाने की आवश्यकता पर जोर देते।यह पहल केवल जनता के लिए हैं? अथवा सरकार और राजनीतिक नेतृत्व को भी समान रूप से सुधार प्रस्तुत करना होगा? इसके लिए आवश्यक होता कि सरकार भी उसी समय कुछ दायित्वों को स्वीकार करती, तो जनता में संदेश और अधिक प्रभावशाली रूप से जाता.जैसे चार दिन सप्ताह कार्य दिवस मंत्रिमंडलीय बैठक वीडियो कॉन्फ्रेंसिंग द्वारा करके परिवहन व्यय की बचत की जा सकती है.कई देशों ने इसे लागू भी किया है.

साथ ही प्रधानमंत्री द्वारा सुझाए गए उपरोक्त उपायों से किसी को भी कोई आपत्ति नहीं हो सकती है.परन्तु आत्म अनुशासन सिर्फ एक साल के संक्रमण काल के लिए नहीं, जो ऊंट के मुंह में जीरा समान है, स्थिति से बाहर आने के लिए दीर्घकालीन आर्थिक अनुशासन की दृष्टि से देश को लंबे समय तक के लिए नागरिकों को उक्त उपायों को अपने जीवन में उतार कर, एक नागरिक का कर्तव्य निभाकर, देश हित में होते दिखना होगा.क्योंकि जिन मूल तत्वों के कारण यह संकट की स्थिति निर्मित हुई है, उनका प्रभाव लम्बे समय तक रहना है.वह इसलिए कि इस संकट के दो मूल कारण, एक कच्चे तेल के उत्पादन की मात्रा, जो कुल आवश्यकता का मात्र 11-12त्न है, जो वर्ष 2014 में कुल 22.40 प्रतिशत हिस्सा था, अर्थात 11 वर्ष से लगातार आत्मनिर्भरता घट रही है.सोने का उत्पादन जो मात्र1 प्रतिशत के आसपास है.इनके उत्पादन की मांग की पूर्ति तक बढ़ाना असंभव है।मोदी द्वारा की गई घोषणाएं करने के पूर्व कबीर की यह युक्ति याद आती है-पर उपदेश कुशल बहुतेरे, आचरहिं ते नर न घनेरे.दूसरों को ज्ञान देना

आसान है, लेकिन उन्हें उपदेशों (ज्ञान) का स्वयं आचरण (अमल) करने वाले लोग विरले ही हैं.मोदी की उक्त अपील के पूर्व, देश के तीन प्रधानमंत्री कुछ इसी तरह की राष्ट्रव्यापी अपील नागरिकों से पूर्व में कर चुके हैं.प्रथम स्वर्गीय लाल बहादुर शास्त्री, द्वितीय स्वर्गीय जवाहरलाल नेहरू व तीसरी स्वर्गीय इंदिरा गांधी.

पूर्व प्रधानमंत्री स्वर्गीय लाल बहादुर शास्त्री ने 1965 के भारत-पाक युद्ध के समय उत्पन्न खाद्य संकट का सामना करने के लिए जय जवान, जय किसान के नारे के साथ जनता से सप्ताह में एक दिन उपवास की अपील की थी.परन्तु जनता से अपील करने के पूर्व सादगी पूर्ण जीवन जीने वाले शास्त्री ने अपने परिवार व स्वयं पर वह प्रतिबंध लागू किया था.1962 के भारत चीन के युद्ध के दौरान सोना दान करने की अपील पंडित जवाहर लाल ने कर, उसे राष्ट्रीय सुरक्षा फंड में योगदान बताया.इस अपील पर तब इंदिरा गांधी ने अपने अधिकांश गहने लगभग 336 ग्राम सोना दान दे दिया था.जनता ने 262 किलो सोना दान दिया था.आज के 800 मीट्रिक टन के आसपास पर्याप्त गोल्ड रिजर्व की तुलना में नेहरू के जमाने में गोल्ड रिजर्व था ही नहीं.विदेशी मुद्रा का संकट होने पर जून 1967 में इंदिरा गांधी ने देशवासियों से सोना नहीं खरीदने की अपील करते हुए इसे राष्ट्रीय अनुशासन का हिस्सा बतलाया था.

प्रधानमंत्री मोदी की तुलना उक्त तीन प्रधानमंत्री द्वारा की गई घोषणा के साथ उनके द्वारा किये गये उक्त आचरण के साथ कीजिए.स्थिति स्पष्ट हो जायेगी.मोदी द्वारा घोषणा करने के पूर्व व बाद में 24 घंटे के अंदर 4 रोड शो किये गए, पेट्रोल-डीजल का अपव्यय को रोका नहीं गया, जिसकी अपील वे देश के नागरिको से कर रहे थे.मोदी अपील कर दो घंटे बाद गुजरात रोड शो के लिए निकल गये.इसे टाला जा सकता था.याद कीजिए 2 अक्टूबर 2014 को स्वच्छता के पोशाक महात्मा गांधी की जयंती पर प्रधानमंत्री जब स्वच्छ भारत अभियान का शुभारंभ झाड़ू लगाते हुए रोड पर उतरे थे, तब उस अपील का राष्ट्र व्यापक प्रभाव पड़ा था, जिसका कुछ असर अभी भी है.ऐसा लगता है, प्रधानमंत्री की उक्त घोषणा पूरी तैयारी के साथ नहीं बल्कि कुछ उदासीनता सी दिखती है.अन्यथा

> उक्त घोषणा में प्रधानमंत्री केंद्रीय मंत्री राज्यों के मंत्री व विशिष्ट व्यक्ति की सुरक्षा में लगी सुरक्षा गार्ड में 50 प्रतिशत की कमी (बाद में कुछ घोषणाएं इस संबंध में की गई), मंत्रियों के लिए मंत्रिमंडलीय बस का शुभारंभ कर देते, वाहनों की स्पीड में 10 प्रतिशत की कमी, एसी के तापमान की सीमा निर्धारित करना आदि अनेक उपायों की घोषणा कर तुरंत लागू करते, जनता में विश्वास व सहभागिता का ज्यादा अच्छा संदेश जाता.यदि प्रधानमंत्री घोषणा के समय असम शपथग्रहण समारोह मैदान में न होकर राजभवन में कराने की घोषणा कर देते, तो उसका व्यापक प्रभाव पड़ता.मुझे याद आता है मेरे पिताजी स्वर्गीय गोवर्धन दास जी खंडेलवाल ने 1967-69 में दो बार शपथ राजभवन में ही ली थी. प्रधानमंत्री के संदेश की संजीदगी की स्थिति देखिए.संदेश सोशल वीडियो में तुरंत वायरल हो गया.लेकिन शीर्षस्थ नेतृत्व से लेकर पार्टी कैडर और जनता तक लागू करने में 2 दिन लग गए.वह भी शायद तब हुआ होगा, जब हाईकमान की बत्ती गई होगी? ऑटो, मोटरसाइकिल से मंत्री, मुख्यमंत्री जा रहे हैं और उनकी वीडियो बनाने के लिए दूसरी गाड़ियां साथ में चल रही है यह बचत है या प्रदर्शन.

जनता से अपील करते समय सरकार व पार्टी के स्तर पर उठाए जाने वाले कदमों की भी तुरंत घोषणा करते तो उसका वैसा ही प्रभाव पड़ता है जैसा स्वच्छता की अपील का हुआ था.